खुद के लिए अलग, मरीज़ के लिए अलग उपचार

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

ऐसा प्रतीत होता है कि डॉक्टर अपने मरीज़ों को ऐसी दवाइयां देते हैं जिनमें मृत्यु की आशंका कम हो। यानी वे खुद के लिए उपचार का जो तरीका चुनते हैं, उससे अलग नुस्खा मरीज़ को देते हैं। शायद आप यह सोचने लगें कि यह एक स्वार्थी कृत्य है मगर ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले कृपया पूरी बात पढ़ लें। कुछ समाज वैज्ञानिकों और डॉक्टरों द्वारा किए गए एक अध्ययन से कुछ रोचक दुविधाएं उजागर हुई हैं। यह अध्ययन *आर्काइव्स ऑफ इंटरनल मेडिसिन* के अप्रैल 2011 के अंक में प्रकाशित हुआ है।

इस अध्ययन में दो स्थितियों पर गौर किया गया था और दोनों ही स्थितियां काल्पनिक थीं। पहली स्थिति में शोधकर्ताओं ने 500 डॉक्टरों का साक्षात्कार किया और उनसे कहा कि वे यह कल्पना करें कि या तो स्वयं उन्हें या उनके किसी मरीज़ को आंत का कैंसर है और उन्हें दो सर्जरियों में से एक को चुनना है। दोनों ही सर्जरियों में सफलता की संभावना 80 प्रतिशत है और दोनों में ही इन मामलों में किसी पेचीदगी की कोई आशंका नहीं है।

बाकी के 20 प्रतिशत मामलों में सर्जरी क्रमांक 1 में साइड प्रभाव हो सकते हैं, और सर्जरी के दौरान 4 अलग-अलग किस्म की दिक्कतें पैदा हो सकती हैं। जैसे शायद आंत निकाल देना पड़े, या जीर्ण दस्त की शिकायत पैदा हो जाए, या आंतों में अवरोध पैदा हो जाए या घावों में संक्रमण हो जाए। कुल संभावित पेचीदगियों में से ये 4 प्रतिशत थीं। शेष 16 प्रतिशत मामलों में मृत्यु की आशंका थी।

सर्जरी क्रमांक 2 में दिक्कत तो कोई नहीं होती मगर असफलता 20 प्रतिशत है। यानी यदि 100 मरीज़ों का ऑपरेशन किया जाए, तो 20 प्रतिशत की मृत्यु हो जाती है।

अब सोचना था कि कौन-सा विकल्प बेहतर है। 16 प्रतिशत मृत्यु दर और 4 प्रतिशत पेचीदगी-दर वाली सर्जरी या 20 प्रतिशत मृत्यु दर वाली सर्जरी जिसमें पेचीदगी की आशंका शून्य है।

दूसरे शब्दों में क्या हम वह विकल्प चुनें जिसमें मृत्यु की संभावना तो ज़्यादा है मगर यदि सफल रहा तो और कोई दिक्कत नहीं होगी? डॉक्टर के सामने यह एक वास्तविक दुविधा है।

अध्ययन के निष्कर्ष काफी रोचक रहे। साक्षात्कार किए गए 500 में से 242 डॉक्टरों ने जवाब दिए। इनमें से ज़्यादातर डॉक्टरों ने स्वयं के लिए विकल्प क्रमांक 2 को चुना - वह विकल्प जिसमें साइड प्रभाव तो कम हैं मगर मृत्यु दर ज़्यादा है। इसके विपरीत मरीज़ के लिए उनका चुनाव विकल्प क्रमांक 1 था (242 में से 60 ने यह विकल्प चुना था)। विकल्प 1 यानी मृत्यु दर तो कम मगर पेचीदगियों की संभावना ज़्यादा।

दूसरी स्थिति में बात फ्लू की महामारी की थी। इस संदर्भ में शोधकर्ताओं ने 1600 प्राथमिक चिकित्सकों से मुलाकात की और उन्हें उपचार के विकल्पों में से चुनाव करने को कहा। इनमें से एक समूह से कहा गया कि वे स्वयं एक नवागंतुक फ्लू वायरस से पीड़ित हों तो इनमें से कौन-सा विकल्प चुनेंगे। दूसरे समूह को अपने मरीज़ के लिए उपचार चुनने को कहा गया था।

इस परिस्थिति में भी उपचार के दो क्रम थे। सहभागियों (डॉक्टरों व

मरीज़ों) को यह जानकारी दी गई थी कि उस फ्लू वायरस के इलाज के लिए एक नई इमुनोग्लोबुलिन दवा उपलब्ध है।

प्रथम उपचार में करना यह था कि मरीज़ को अस्पताल में भर्ती करके एक सप्ताह तक पूरा आराम करने की सलाह देना था। इसमें इमुनोग्लोबुलिन या किसी अन्य औषधि की बात नहीं थी। अस्पताल में भर्ती किए जाने की दर 30 प्रतिशत रही। मगर इस 'हस्तक्षेप-विहीन' विकल्प में 100 में से 10 प्रतिशत मरीज़ों की मृत्यु होती है (मृत्यु दर 10 प्रतिशत)।

द्वितीय उपचार विकल्प में नवीन इमुनोग्लबुलिन दवा का इस्तेमाल शामिल था और इसमें अस्पताल में भर्ती किए जाने की दर 15 प्रतिशत थी। इस उपचार शैली में प्रतिकूल घटनाओं की आशंका आधी रह जाती है; अर्थात मृत्यु दर 5 प्रतिशत ही होती है। मगर टांगों में लकवा (4 प्रतिशत) और अन्य कारणों से मृत्यु 1 प्रतिशत हो सकती है।

अर्थात इमुनोग्लबुलिन के इस्तेमाल से मृत्यु दर तो आधी रह जाती है मगर लकवे जैसे साइड प्रभावों की आशंका बढ़ जाती है। अधिकांश लोग मानते हैं कि यह मौत से तो बेहतर ही है।

सवाल है कि डॉक्टरों ने क्या चुना। 1600 में से मात्र 698 डॉक्टरों ने प्रश्नावली का जवाब दिया। जब वे स्वयं मरीज़ थे, तो 440 डॉक्टरों ने इमुनोग्लोबुलिन के जीवनरक्षक लाभ को तिलांजलि देने का फैसला किया, जबकि ऐसा करके वे मृत्यु की आशंका को बढ़ा रहे थे। शेष 258 ने इमुनोग्लोबुलिन को चुना। मगर जब बात मरीज़ों के इलाज की आई तो बड़ी संख्या में डॉक्टरों (386) ने मरीज़ के लिए इमुनोग्लोबुलिन को चुना, जिसमें साइड प्रभाव तो ज़्यादा हैं मगर मृत्यु दर कम है।

दोनों ही संदर्भों में (आंत का कैंसर या फ्लू वायरस) डॉक्टरों ने खुद के लिए अपेक्षाकृत उच्च मृत्यु दर वाला विकल्प चुना। कारण यह लगता है कि वे उन साइड प्रभावों से बचना चाहते थे जो उनकी रोज़मर्रा की गतिविधियों को प्रभावित कर सकते हैं।

मगर अपने मरीज़ों के लिए उन्होंने कम मृत्यु दर मगर ज़्यादा साइड प्रभाव वाला विकल्प चुना। अध्ययन में इस फैसले पर इस बात का कोई असर नहीं देखा गया कि डॉक्टर पुरुष था या स्त्री, युवा था या बुज़ुर्ग, श्वेत था या अश्वेत, निजी चिकित्सक था या सरकारी। इन सब डॉक्टरों ने अपने मरीज़ के लिए कम मृत्यु दर वाला विकल्प चुना।

यह अंतर क्यों? इस अंतर का कारण सिर्फ मुकदमेबाज़ी का डर या ऐसी कोई चिंता नहीं था। इसके पीछे एक मनोवैज्ञानिक आधार दिखता है जिसे संज्ञान पूर्वाग्रह कहते हैं। मनोवैज्ञानिक बताते हैं, "जब लोग अन्य लोगों के बारे में सिफारिश करते हैं, तो वे विकल्पों के एक ही पहलू पर ध्यान केंद्रित करते हैं, खास तौर से उस विकल्प पर जिसका बचाव आसानी से किया जा सके।"

मगर जब वे स्वयं अपने लिए चुनाव करते हैं, तो कई पूर्वाग्रह उभर कर आते हैं। एक तो यह एहसास होता है कि हस्तक्षेप के कारण होने वाला नुकसान कभी-कभी उस बीमारी द्वारा किए जाने वाले नुकसान से ज़्यादा महत्त्व रखता है। मनोवैज्ञानिक इसे जोखिम से बचाव कहते हैं।

इसके अलावा एक 'चूक पूर्वाग्रह' भी होता है। किसी कार्य को करने से होने वाला नुकसान जब कुछ भी न करने से ज़्यादा होता है। यानी कुछ करने की अपेक्षा कुछ न करना बेहतर होता है। ऐसे संज्ञान पूर्वाग्रह उस समय भूमिका अदा करने लगते हैं जब व्यक्ति स्वयं के निजी फैसले करते हैं। मगर अन्य लोगों के लिए फैसले करते वक्त वही विकल्प सुरक्षित है जिसका बचाव सबसे आसानी से किया जा सके।

हिप्पोक्रेट्स ने चिकित्सकों को एक सलाह दी है, "मरीज़ को कोई नुकसान न हो।"

मगर यदि साइड प्रभाव और पेचीदगियां नापने योग्य संख्याओं के रूप में हों, तो डॉक्टर की दुविधा बढ़ जाती है। ऐसे में डॉक्टर चाहते हैं कि जीवन की हानि कम से कम हो, इस उम्मीद में कि जो भी पेचीदगियां पैदा होंगी, उनका इलाज अन्य तरीकों से कर लिया जाएगा या समय के साथ हो जाएगा। ***(स्रोत फीचर्स)***